Chandamama, May '51 | Photo by S. Ramakrishna

पुजारी

चन्दामामा

माँ-बच्चों का मासिक पत्र
संचालक : चक्रपाणी

एक बार नन्द सपरिवार
'अम्बिका-वन' में गए। वहाँ नन्द आदि ने
सरस्वती नदी में स्नान करके शिवजी के दर्शन किए। सारा
दिन आनन्द से बिता कर रात को वे वहीं सो रहे। उसी जंगल
में एक बड़ा भारी अजगर था जो बहुत दिनों से भूखा था। उसने
धीरे धीरे आकर नन्द को निगलना शुरु किया। नन्द उसे देख कर भय
के मारे चिल्लाने लगे। ग्वाले लोग उस अजगर को देखते ही भाग गए। कुछ
साहसी लोगों ने अपनी मशालों से उस अजगर को जलाया; भाले-बरछियों से
मारा। लेकिन अजगर उस से मस न हुआ। तब एक ने जाकर कन्हैया को
खबर दी। कृष्ण दौड़े दौड़े आए। उनके छूते ही अजगर एक सुन्दर गन्धर्व के
रूप में बदल गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा—'भगवान! मैं एक गन्धर्व
हूँ। मेरा नाम सुदर्शन है। मैंने एक बार अपने रूप के घमण्ड में अंगीरस नामक
मुनि की दिल्लगी उड़ाई। तब उन्होंने क्रोधित होकर मुझे अजगर बनने का
शाप दिया। जब मैंने बहुत गिड़गिड़ा कर उनसे क्षमा माँगी तो उन्होंने
कहा—'जाओ! जिस दिन भगवान कृष्ण तुम्हें अपने हाथ से
छुएँगे उस दिन तुम्हारा शाप छूट जाएगा।' आज उनका
कहना सच हुआ।' यह कह कर वह गन्धर्व
अपने लोक को चला गया।

वर्ष 2 — अंक 9
मई — 1951

एक प्रति 0-6-0
वार्षिक 4-8-0

बड़ों की बात

किसी जगह था एक गढ़ा जो
छोटा सा, पर था गहरा।
उसमें स्वच्छ नीर रहता था
सब ऋतुओं में, सदा भरा।

एक झुण्ड बतखों का आता
अक्सर उसी गढ़े के पास।
बतखें जल में क्रीड़ा करतीं
और तैर कर रचतीं रास।

खूब बहस करतीं आपस में
वे सब अपनी भाषा में—
या डुबकी मारतीं नीर में
क्रिमि—कीटक की आशा में।

इक दिन इक मुरगी की बच्ची
ने बतखों को देखा जब—
'मैं भी क्यों न गढ़े में तैरूँ?'
उसने मन में सोचा तब।

मना किया था उसकी माँ ने
उसको जल में जाने से,
उतर गढ़े में पानी पीने
या तैरने, नहाने से।

'बैरागी'

पर उस बेवकूफ बच्ची ने
सोचा अब अपने दिल में—
'माँ ने मुझे डराया यों ही;
मैं भी क्यों न चलूं जल में ?

मुश्किल नहीं तैरना, बतखों
सी मेरी भी हैं आँखें।
हैं दो पैर, फड़फड़ाने को
हैं मेरी भी दो पाँखें।

है चोंचों में जरा फरक, पर
इससे क्या आता – जाता ?
चोंच चलाने और तैरने
में बोलो, है क्या नाता ?'

सोच यही मूरख वह मुरगी
की बच्ची उतरी जल में।
माँ के वचन याद आए जब
जान फँस गई मुश्किल में।

पंख मार कर, तड़प, छटपटा
कर वह डूब गई आखिर।
बात बड़ों की जो न सुनेगा
उसका श्रम होगा सत्वर।

चन्दा

[रामकुमार तिवारी]

जब छोटा-सा बच्चा था मैं,
चन्दा देख मचलता।
ऊपर हाथ बढ़ाता था, पर
कैसे उसे पकड़ता ?

रोते-रोते थक जाता जब,
माँ दौड़ी तब आती।
दे-दे मुझे प्रेम से थपकी
गीत मधुर वह गाती।

'आओ-आओ चन्दा, लेकर
दूध-भात का दोना।
दौड़ो-दौड़ो, देखो, कितना
रोता मेरा सोना ?'

माँ की सुन्दर गोदी में, तब
अपने को मैं पाकर—
लगाता उसका मुख निहारने
धीरे से मुसका कर।

तब चन्दा का मुखड़ा भी, खिल
उठता मधुर हँसी से।
मानो वह भी सुन पाया हो
माँ का गीत खुशी से।

जल में चन्दा, थल में चन्दा
और गगन में चन्दा।
जिधर जिधर भी आँखें जातीं
उधर-उधर ही चन्दा।

इसी तरह नित बचपन में मैं
उससे मन बहलाता।
तरह-तरह के खेल खिलाता,
हँसता और हँसाता।

पर अब बड़ा हुआ मैं, तो भी
उससे इतनी दूरी!
कोटि यत्न करने पर भी, है
मिलने में मजबूरी।

जो मैं एक बार फिर, छोटा
या भोला बन पाता—
तो चन्दा को खींच गगन से
इस भू पर ले आता।

या परियों के संग आप ही
नील-गगन में जाता।
चन्दा से मैं गला मिला कर
गीत खुशी के गाता।

पर, चन्दा! कोई उपाय अब
नहीं वहाँ जाने का।
है अनुरोध हृदय का तुमसे
ही, भू पर आने का।

अन्धकार मेरे मन का, तुम
आकर यहाँ मिटाना!
मधुर चाँदनी छिटका कर, फिर
हँसना और हँसाना!
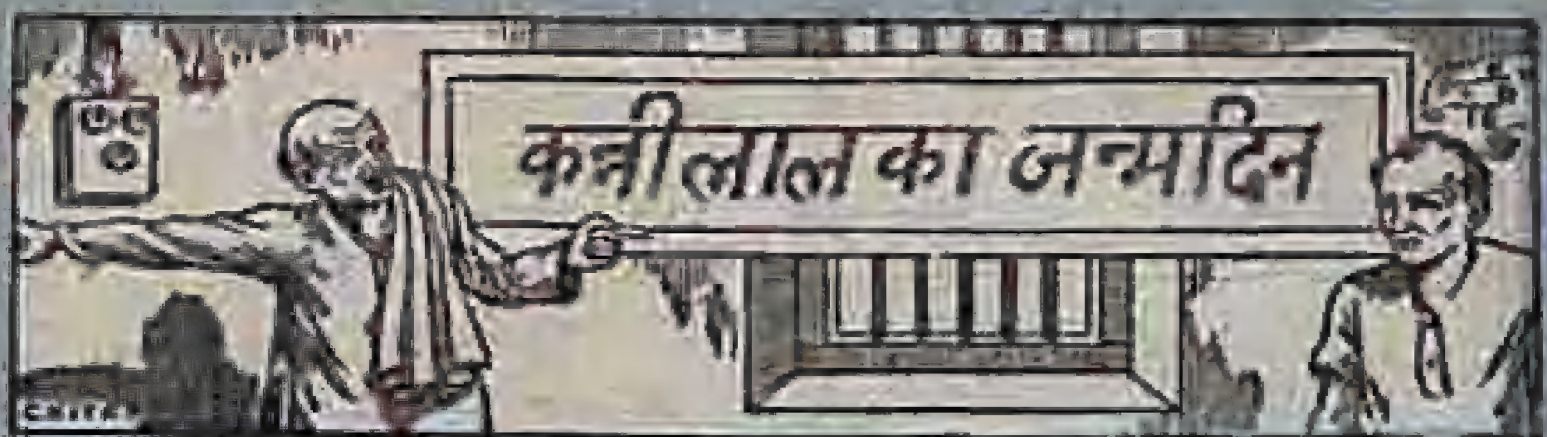
कलकत्ते के बाग-बाजार में कौड़ीमल नाम के एक लालजी रहते थे। किसी समय उन्होंने व्यापार करके बहुत सा रुपया कमाया था। कुछ दिन बाद उन्होंने व्यापार बन्द कर दिया। क्योंकि घाटे का डर था। कुछ सोच-समझ कर उस रुपए से उन्होंने कलकत्ते के हर मुहल्ले में दो-दो तीन-तीन मकान खरीद लिए। उस समय मकान सस्ते थे और ज्यादा रुपया न लगता था।

इस तरह वे आज उनतीस मकानों के मालिक बन गए थे। लालजी हर महीने अपने एक एक मकान के दरवाजे पर धरना देकर बैठ जाते और भाड़ा पाई-पाई वसूल कर लाते। फिर भी कभी वे उन मकानों की मरम्मत करवाने का नाम न लेते थे।

धीरे धीरे जब मकानों की तंगी हो गई तो उन्होंने हरेक का भाड़ा बढ़ा दिया। अगर कोई चूँ-चपड़ करता तो तुरंत कहते— 'मकान खाली कर दो।' कोई उनसे झगड़ा करता तो वे मकान के बिजली के तार कटवा देते या नल का पानी बन्द करके उसके नाकों दम कर देते। आखिर उसे मकान छोड़ कर जाना ही पड़ता।

लालजी को हमेशा डर लगा रहता था कि वह किसी महीने किसी मकान का भाड़ा वसूल करना भूल न जाएँ। इसलिए उन्होंने अपने उनतीसों मकानों की, किराएदारों के पूरे पते के साथ एक सूची भी तैयार कर ली थी। वे उसे हमेशा जेब में लिए घूमते थे। वे हरेक आसामी के नाम के सामने उसके किराए की रकम दर्ज कर रखते थे और उसके मुताबिक रुपया वसूल करते थे।

इसी तरह उन्होंने एक बार घर-घर जाकर भाड़े के रुपए वसूल किए और सूची के साथ बटुए में रख लिए। तब तक दोपहर हो गई थी। धूप बड़ी तेज थी। इसलिए वे एक ट्राम-गाड़ी पर चढ़े। थोड़ी देर बाद उन्होंने ट्राम से उतर कर जेब में हाथ रखा

राधाचरण

तो बटुआ नदारद। लालाजी के पैरों तले से धरती खिसक गई। वे मुँह बाए खड़े रह गए। उनका चेहरा देख कर लोग चारों ओर से जमा हो गए और पूछने लगे कि बात क्या है? क्या कुछ खो गया है?

लेकिन वे क्या कर सकते थे! किसी ने कहा—'बटुआ खो गया है!' लोग अफसोस करते हुए वहाँ से चले गए। लेकिन कुछ लोगों ने एक दूसरे से कहा—'वह जरूर बेईमानी का पैसा होगा। इसीलिए जिस तरह आया वैसे ही चला गया।'

लालाजी जिस ट्राम पर चढ़े थे उसी में कल्लीलाल नामक एक गिरहकट भी चढ़ा था। लालाजी के बटुए पर उसकी नज़र पड़ गई थी। इसलिए वह उनकी बगल में ही जाकर खड़ा हो गया था। बेचारे लालाजी को क्या मालूम था कि कल्लीलाल का हाथ कब उनकी जेब की तरफ बढ़ा और कब उसने बटुआ निकाल लिया। इस तरह अपना काम पूरा करके कल्लीलाल बीच में ही ट्राम से उतर पड़ा। जाते-जाते वह एक निर्जन प्रदेश में ठहर गया। उसका भी भाग्य अच्छा न था। नहीं तो वह सीधे घर ही चला जाता।

बटुए में कितना है, यह देखने के लिए कल्लीलाल का मन बेचैन हो रहा था। इसलिए उसने एक बार चारों ओर देख लिया और बटुआ खोल कर रुपए गिनना शुरू कर दिया। बटुआ ठूँस ठूँस कर भरा था। यह देख कर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसने एक, दो, तीन कह कर गिनना शुरू किया। बटुए में कुल तीन सौ तिरासी रुपए थे।

गिन कर वह फिर बटुआ बन्द कर ही रहा था कि किसी की आवाज सुनाई दी—'कौन! कल्लीलाल!'

कल्लीलाल ने पीछे फिर कर देखा तो उसके होश उड़ गए। वह पुलिस के थानेदार

मेघराज की आवाज थी। वह मुँह लटका कर खड़ा हो गया।

मेघराज ने छबीलाल के हाथ में ठूँस ठूँस कर भरा हुआ बटुआ देख लिया था। 'क्यों छबीलाल! तुम्हें जेल से निकले डेढ़ महीना भी न हुआ और तुमने फिर अपना काम शुरू कर दिया!' उसने कहा।

छबीलाल 'हाँ-हूँ' करने लगा। तब मेघराज ने कहा—'बटुआ खोलो तो देखूँ!'

जब छबीलाल ने बटुआ खोल कर दिखाया तो मेघराज को रुपयों के अलावा लालाजी के आसामियों की सूची भी दिखाई दी। 'उस कागज पर क्या लिखा है?' मेघराज ने पूछा।

बेचारे छबीलाल को क्या मालूम था कि उस कागज पर के नाम किसलिए लिखे हैं! लेकिन इतने में उसे एक सुन्दर उपाय सूझा। 'थानेदार साहब! इस सूची में मेरे दोस्तों के नाम और पते लिखे हुए हैं! मेरे बारे में आप क्या सोचते है, यह तो मुझे मालूम नहीं! लेकिन इस बार जेल से निकलते ही मैंने अपनी चाल बदल दी! मैंने अब पुराना पेशा छोड़ दिया है।' छबीलाल ने गंभीरता से कहा।

'बहुत अच्छा! लेकिन पहले यह तो बताओ कि तुम्हें यह बटुआ और ये रुपए कहाँ से मिले?' थानेदार ने पूछा।

'कहाँ से मिलेंगे? साहब! यह मेरी गाढ़ी कमाई है। आप तो जानते ही हैं कि मैंने पुराने दिनों में कितना पाप किया था! मैंने सोचा कि किस तरह इस पाप से छुटकारा मिले! आखिर मैंने इरादा कर लिया कि जिन लोगों ने मुझे अच्छे रास्ते पर चलाने की कोशिश की है, उन सबको मैं कुछ रुपए भेजूँ! इसी इरादे से मैंने कड़ी मेहनत करके ये रुपए जमा किए। आज मेरा जन्म-दिन है। मैंने सोचा, इससे अच्छा

समय कब मिलेगा ! इसलिए मैंने एक सूची तैयार कर ली कि किन किन को कितने कितने रुपए भेजने होंगे ! अभी मैं सूची साथ लेकर रुपए मनीआर्डर करने के लिए जा रहा था कि आप मिल गए।' कलीलाल ने कहा।

मेघराज को मालूम था कि कलीलाल किस्सा गढ़ रहा है। इसलिए उसने कहा—'तो चलो, डाक-घर चलें। मैं भी तुम्हारे साथ आता हूँ।' यह सुन कर कलीलाल के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। लेकिन वह इनकार करे कैसे! रोनी सूरत बना कर थानेदार के साथ डाक-घर गया और सूची के मुताबिक सारा रुपया मनीआर्डर कर दिया।

लेकिन इतने से पिण्ड न छूटा। डाक-घर के मुंशी ने रुपए गिन कर कहा—'लेकिन मनीआर्डर-कमीशन कहाँ है?'

बेचारा कलीलाल कमीशन की बात ही भूल गया था। अगर उसे यह बात पहले ही याद आती तो कमीशन काट कर ही रुपए भेज देता! लेकिन अब क्या करता! आखिर उसे अपनी गाँठ से निकाल कर चार रुपए आना चुकाने पड़े।

दूसरे दिन लालाजी के घरों में रहने वाले उनतीस लोगों को मनीआर्डर मिले। उन बेचारों की समझ में न आया कि यह कलीलाल कौन है और उसने उनके घर का ठीक एक महीने का किराया क्यों भेजा है! पीछे जब उन लोगों को मालूम हुआ कि लालाजी का बटुआ खो गया है तब उन्होंने सोचा—'जरूर किराए-वालों में से ही किसी ने क्रोध के मारे लालाजी का बटुआ निकाल लिया और अपना रुपया लेकर भाई-चारे के नाते बाकी किराए-वालों को उनका रुपया लौटा दिया है।' यह सोच कर वे खामोश रह गए। बेचारे कलीलाल का जन्म-दिन इस तरह कटा। जो रुपया हाथ लग गया था सो तो गया ही; साथ साथ उसके पसीने की कमाई भी चली गई।

बाप और बेटा

वह कुल्ला करके अन्दर जा ही रहा था कि इतने में कोई भले-मानुस 'राजाराम कहाँ है!' कहते हुए कमरे में आए।

उन्हें देखते ही नारायण के होश उड़ गए। ये महाशय एक वकील थे। उसके पिताजी के ये पुराने दोस्त थे। पिताजी की जमीन-जायदाद के मामले सभी इन्हीं के हाथ में रहते थे। ये कभी कभी उनके घर आया करते थे और राजाराम से बहुत देर तक बातें करके चले जाते थे। उसके पिता कितने ही जरूरी काम में क्यों न लगे हुए हों, इनके आने पर तुरन्त बात कर लेते थे।

वकील साहब नारायण के साथ कमरे में आकर बैठ गए। कुर्सी में आसन जमा कर बहुत देर तक बोलते रहे। सब मुकदमे-मामलों के बारे में था।

नारायण की समझ में सिर्फ एक ही बात आई। वह यह कि कल राजाराम को एक मुकदमे में गवाही देनी थी। उसी की गवाही पर सारा मुकदमा दारोमदार था। गवाह से क्या क्या सवाल पूछे जाएँगे, उनके क्या क्या जवाब देने चाहिए, इसके बारे में वकील ने नारायण को बहुत समझाया।

लेकिन नारायण का मन वहाँ कहाँ था! वह तो यह सोच रहा था कि कल अदालत में जाने से कैसे उसकी जान बचे!

वकील साहब दस बजे तक बातें करके चले गए। लेकिन उस रात नारायण को नींद न आई। न जाने, उसके पिता क्या हो गए! कल वह क्या करेगा! वह यही सोचने में लगा रहा। अचानक नारायण के मन में उसके पिता के प्रति आदर का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा—'बड़ों का संसार अलग है। उसमें मुझको हाथ न डालना चाहिए था।' अब पछताने से क्या फायदा? उसने नासमझी के कारण अपने पिता के प्रति अन्याय किया। उसके पिता ने उसका

क्या बिगाड़ा था? यही न कि उसे पढ़ने को कहा? वह तो उसी की भलाई के लिए था। उसके पिता ने बचपन में अच्छी तरह पढ़ा-लिखा। तभी तो वे बड़े होकर घर का सारा काम-काज सम्हाल सके!' अगर भगवान की कृपा से मैं फिर कभी पहले की ही तरह लड़का बन गया तो इस घर बड़ों के प्रति कोई शिकायत न करूँगा।' नारायण ने सोचा।

उसी समय राजाराम आकर अँधेरे में घर के चबूतरे पर बैठा हुआ था। बात यह हुई कि राजाराम ढाई बजे की गाड़ी पर चढ़ तो गया। लेकिन दो तीन स्टेशन तक जाने के बाद टिकट-बाबू ने आकर टिकट माँगा। अगर राजाराम सचमुच बच्चा होता तो शायद वैसी गुनाहगार की सी शकल न बनाता। लेकिन वह अपना कसूर जानता था। इसलिए तुरन्त पकड़ा गया। उसकी जेब में एक कौड़ी भी न थी। टिकट बाबू ने उसे तीन चार थप्पड़ लगा कर अगले स्टेशन पर गाड़ी से उतार दिया। लाचार होकर राजाराम सोलह मील तक पैर घसीटता, पैदल चल और भूख-प्यास से बेदम होकर रात के ग्यारह बजे घर पहुँचा। किवाड़ खटखटाने से सब लोग जाग जाते और उस पर सवालों की झड़ी लग जाती। इसलिए वह चबूतरे पर बैठ कर सोचने लगा कि अब क्या किया जाए! उसने सोचा कि अब वह एक दिन भी इस लड़के की काया में नहीं जी सकता। क्यों

की दुनिया अलग थी। वह उस दुनिया से बहुत दूर चला आया था। इसीलिए वह बच्चों का स्वभाव न जान सका। उसने समझा कि उसका लड़का जिद्दी है। लेकिन उसने उसकी तकलीफें न जानीं। उससे प्यार से बोले कितने दिन हुए! क्या पिता का यही धर्म था! राजाराम ने सोचा कि अगर भगवान की कृपा से कभी उसे पहले का सा रूप मिल गया तो इस बार वह अपने लड़के को अच्छी तरह प्यार करेगा। उसे तनिक भी तकलीफ़ न होने देगा।

देवी लक्ष्मी ने जब बैकुण्ठ से यह सब देखा तो भगवान विष्णु से कहा—'भगवन! उन बेचारों को फिर पहले के से रूप दे दीजिए!'

भगवान ने हामी भर दी। तुरन्त चबूतरे पर बैठा हुआ राजाराम फिर राजाराम बन गया। कमरे में पलङ्ग पर लेटा हुआ नारायण भी फिर पहले जैसा हो गया।

देवी ने सोचा—'अब ये दोनों हिल-मिल कर प्रेम से रहेंगे।'

लेकिन भगवान ने कहा—'अच्छा! देखोगी न, अभी क्या होता है!'

राजाराम चबूतरे पर खड़ा हो गया। अब उसे ऐसा लगा कि वह बहुत ऊँचा हो गया है। लेकिन उसे पूरी तरह मालूम न था कि वह पहले जैसा हो गया है। चबूतरे पर बैठे बैठे उसका मन ऊब गया था। इसलिए राजाराम ने हिम्मत करके दरवाजा धीरे धीरे खटखटाया। उसने सोचा कि महाराजिन दरवाजा खोलेगी तो वह किसी न किसी तरह समझा देगा।

महाराजिन ने दरवाजा खोला तो राजाराम को देख कर दङ्ग रह गई। 'आप बाहर कब गए बाबूजी! अभी तो आप कमरे में लेटे हुए थे! आपको बाहर छोड़ कर किवाड़ किसने लगा दिए!' उसने पूछा।

लेकिन राजाराम यह सब नहीं सुन रहा था। उसका ध्यान तो 'बाबूजी!' शब्द पर लगा हुआ था। इतने दिन बाद महाराजिन ने फिर उसे 'बाबूजी!' कह कर पुकारा। उसने अपना मुँह टटोल कर

देखा। मूँछ और चश्मा हाथ लगे। खुशी के मारे राजाराम की आँखों से आँसू बह चले। उसके मुँह से बात तक न निकली।

महाराजिन की आवाज़ सुन कर नारायण भी नीचे उतर आया। अपने पिता को देख कर उसका मुँह सफेद फक हो गया। उसने अपने हाथ पाँव देखे तो मालूम हो गया कि उसका भी रूप बदल गया है।

नारायण को देख कर राजाराम का बदन गुस्से से जल उठा। यह सब इसी बदमाश की करतूत थी। इसी ने उसे स्कूल भेजा। मास्टर से पिटवाया। इसी ने उसकी देह चुरा ली। देह ही नहीं, अलमारी की चाभियाँ और रुपए-पैसे भी चुरा लिए। 'क्यों रे! अब तेरी उछल-कूद खतम हो गई!' राजाराम ने कहा।

अपने पिता को देख कर नारायण का मन भी गुस्से से भर गया। उसके पिता ने ही तो उसकी सुन्दर फुर्तीली देह चुरा कर अपनी बूढ़ी काया उसे सौंप दी थी। वह न तो पेट भर खा सकता था, न पहले की तरह उछल-कूद ही सकता था और न पेड़ पर ही चढ़ सकता था। उलटे अब उस पर बिगड़ रहे थे। 'मेरी ही नहीं; आपकी उछल-कूद भी खतम हो गई।' उसने गुस्से से जवाब दिया।

'देखा तुमने! वे अपनी भूल आप ही सुधारेंगे। हमें इसमें दखल देने की ज़रूरत नहीं। इन्हें दो चार मौका मिला। लेकिन देखा, क्या फ़ायदा हुआ! ये तो वैसे के वैसे ही बने रहे।' भगवान ने देवी लक्ष्मी से कहा। [समाप्त]

मौत का घर

किसी गाँव में तीन डाकू रहते थे। वे नजदीक के एक पहाड़ की घाटी में छिपे रहते थे और उस राह से जाने वाले लोगों का मार-पीट कर सब-कुछ लूट लेते थे। एक दिन की बात है। डाकू झाड़ियों की आड़ में छिपे बैठे थे। इतने में उन्होंने देखा कि एक साधू पहाड़ की ओर से दौड़ा आ रहा है। देखने से ऐसा मालूम होता था, जैसे कोई बाघ या शेर उसका पीछा कर रहा है।

डाकू झाड़ियों में से निकले और साधू को रोक कर कहा—'अजी! इस तरह बेतहाशा क्यों भागे जा रहे हो!'

तब उस साधू ने थर-थर काँपते हुए कहा—'क्या कहूँ! उस पहाड़ में एक गुफा है। मैंने सोचा कि चलूँ, उस गुफा में बैठ कर तप करने में बड़ा अच्छा होगा। लेकिन वहाँ जाकर देखा तो मालूम हुआ कि वहाँ मौत रहती है। मुझे डर लगा कि अगर मैं पल भर भी वहाँ खड़ा रहा तो वह मुझे निगल ही जाएगी। इसलिए मैं उलटे-पाँव भाग चला। मुझे रोको मत! अगर भला चाहते हो तो तुम लोग भी यहाँ से सिर पर पाँव रख कर भाग जाओ!'

उसकी ये बातें सुन कर डाकुओं ने अचरज के साथ कहा—'क्या कहते हो, मौत! इतने दिनों से हम लोग पहाड़ के आस-पास डाका डालते आए हैं। अनेकों राहियों को मार मार कर उनसे रुपए-पैसे, गहने-जवाहर छीनते आए हैं। लेकिन हमारी कभी मौत से भेंट न हुई। क्या तुम हमें मौत की जगह दिखा सकते हो!'

साधू ने इनकार किया। लेकिन डाकुओं ने नहीं माना। उन्होंने उसे डराया-धमकाया। तब लाचार होकर साधू उन्हें गुफा की तरफ़ ले चला। गुफा में जाने पर उन्हें सामने ही

नारायण प्रसाद

हमारी ही नसीब अच्छी है।' डाकू अपने मन में कहने लगे।

तब साधू ने उनकी ओर फिर कर कहा—'भाइयो! यह धन की ढेरी ही आदमी की मौत है। इसलिए चलो! तुरन्त भाग जाएँ! अगर हम पल भर भी रुके तो फिर हमारी खैरियत नहीं! तुम आओ न आओ! मैं तो चला।' यह कह कर वह साधू सिर पर पैर रख कर तुरन्त वहाँ से भाग गया।

सोने की एक बड़ी ढेरी दिखाई दी। गहनों में जवाहरात जड़े हुए थे। उनकी रोशनी से सारी जगह जगमग हो रही थी। गुफा में अँधेरे के बदले दिन की सी रोशनी हो रही थी। तीनों डाकू अचरज से उस ढेरी को देखते खड़े रह गए। उन्हें अपनी आँखों पर आप ही विश्वास न होता था। 'हमारी आँखों के सामने जो खजाना दिखाई दे रहा है क्या वह सच्चा है? कहीं यह सब जादू तो नहीं है? या हम कहीं सपना तो नहीं देख रहे हैं? क्या हमने ज़िन्दगी में कभी धन की इतनी बड़ी ढेरी देखी थी? वाह! हम कैसे खुशनसीब हैं! सचमुच संसार में सबसे

साधू का यह कहना कि उस बेशुमार दौलत की ढेरी में मौत रहती है, सुन कर डाकुओं को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने सोचा—'हो न हो, यह साधू ज़रूर पागल था।' वे बड़ी खुशी से उस ढेरी को आपस में बाँटने की तैयारी करने लगे। लेकिन उस ढेरी की चीज़ों को गिनना कोई आसान काम न था। हिस्से लगाते लगाते उनका जी ऊब गया, हाथ दुखने लगे, दम फूलने लगा और भूख भी लगने लगी। तब उनमें से एक ने कहा—'मैं गाँव जाकर खाने पीने की चीज़ें ले आता हूँ। तुम दोनों यहीं रह कर इस ढेरी पर पहरा देते रहो। मेरे लौटने के बाद तीनों इस धन को बाँट लेंगे।' उसकी बात

बाकी दोनों ने मानी और उसे गाँव भेजा। गाँव जाने वाले ने जाते जाते अपने मन में सोचा—'मेरे ये दोनों साथी कितने बेवकूफ हैं! ये दोनों सोचते हैं कि मैं सचमुच उनके लिए खाना लाने ही जा रहा हूँ। ये भोंदू क्या जानें कि मैंने सारा धन हड़पने के लिए अपने मन में पहले से ही एक उपाय सोच रखा है! ये दोनों हिस्सा चाहते हैं! हिस्सा! तीन हिस्से लगाएँगे और मुझे एक हिस्सा देंगे। देखूँगा कि मैं एक हिस्सा लेता हूँ या तीनों!' यह सोचते हुए वह मन ही मन कल्पना करने लगा कि उतना सारा रुपया लेकर वह क्या क्या काम कर सकता है!

इधर अपने साथी के जाते ही गुफा में एक ने दूसरे से कहा—'भई! देखी तुमने इसकी अक्ल! हमें उसके लौट आने तक पहरा देने को कहा! जैसे पहरा देना हमारा काम और हिस्सा बाँट लेना उसका! तुम तो जानते हो, ज्यों-ज्यों हिस्सेदार बढ़ते हैं, हिस्से घटते जाते हैं! इसलिए इसे हिस्सा नहीं देना चाहिए!'

तब दूसरे ने कहा—'मैं भी यही सोच रहा था! लेकिन बताओ! इससे पिण्ड कैसे छूटेगा?'

'इसमें क्या रखा है! हम दोनों गुफा के मुँह पर छिप कर बैठेंगे। ज्यों ही वह अन्दर कदम रखेगा त्यों ही दोनों दो लाठियाँ लेकर टूट पड़ेंगे। बस, वह अपना बचाव भी न कर सकेगा।' पहले ने उपाय बताया।

दूसरे को भी यह अच्छा लगा। दोनों अपनी अपनी लाठियाँ लेकर गुफा के मुँह पर बैठ गए और अपने साथी के आने की राह देखने लगे।

थोड़ी देर में उनका साथी खाने-पीने की चीज़ें लेकर लौटा। उसकी आहट सुनते ही दोनों सम्हल कर खड़े हो गए और उसके अन्दर कदम रखते ही तड़ातड़ लाठियाँ

बरसाने लगे। उसका तो बस, कचूमर ही निकल गया।

इस तरह अपने साथी को धन के लिए बलिदान करके उन दोनों ने अपने हाथ-पाँव धो लिए। फिर खाने की चीज़ें अन्दर ले आकर धन की ढेरी को लालच से देखते हुए भोजन करने लगे। खाकर उन्होंने पानी पिया। तुरन्त उनके पेट में शूल सी उठी और बार बार मतली सी आने लगी। थोड़ी देर में उनकी छटपटाहट और भी बढ़ गई। अब उन्हें मालूम हुआ कि भोजन में ज़हर मिला था। तब पहले ने दूसरे से कहा—'देखा भाई, तुमने! इस पापी ने कैसा काम किया! इसने हम दोनों को ज़हर देकर मारने और खुद सारी दौलत हड़प जाने की सोची थी!' यह कह कर वह उसको गालियाँ देने लगा।

तब दूसरे ने जवाब दिया—'भाई! नाहक उसे क्यों कोसते हो? हमने उससे क्या कम किया? यह तो सूप और छलनी वाला किस्सा है। सच पूछो तो हमीं ने उससे ज़्यादा पाप किया है। इतने दिन तक हम सब भाई-भाई की तरह मिल कर रहते थे। लेकिन आज इस दौलत की ढेरी को देखते ही हम सब की नीयत बिगड़ गई और तीनों आपस में लड़ मरे। साधू ने कहा था कि इस धन की ढेरी में मौत है। तब हमने उसे पागल समझा और उसका मज़ाक उड़ाया! लेकिन देखो न! आखिर क्या हुआ?'

लेकिन 'अब पछताए होत क्या चिड़ियाँ चुग गईं खेत!' थोड़ी देर में ज़हर ने अपना पूरा असर दिखाया और वे दोनों तड़प-तड़प कर दौलत की ढेरी के सामने ही मर गए!
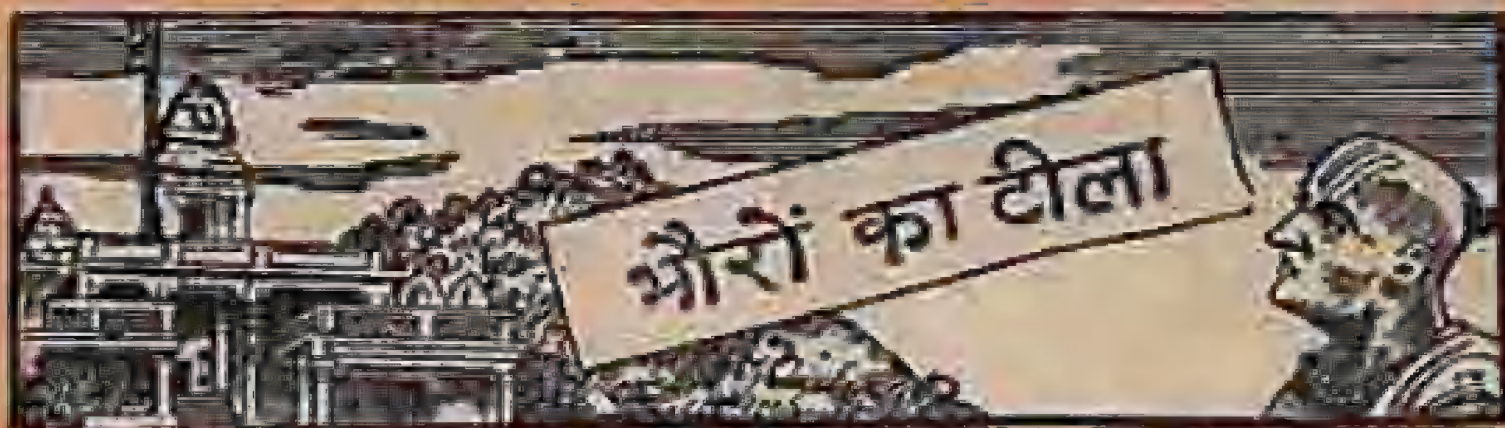
करीब दो सौ साल पहले सिंहाचल के मन्दिर में नरसिंह भगवान रहते थे। कृष्णाचार्य उनके एक भक्त थे, जिनके ऊपर भगवान की बड़ी कृपा थी। कृष्णाचार्य जब भक्ति से विह्वल होकर भगवान के सामने मधुर कण्ठ से गान करते तो भगवान ऐसे प्रसन्न होते कि गान के ताल पर नाचने लग जाते। बहुत दिनों तक यही होता रहा। यह देख कर कृष्णाचार्य के मन में एक तरह का घमण्ड पैदा हो गया। उन्होंने सोचा—'नरसिंह भगवान का मैं सबसे प्यारा भक्त हूँ। वे मेरी बात कभी नहीं टालते हैं।'

उन्हीं दिनों विशिष्टाद्वैत के प्रवर्तक आचार्य रामानुज सारे देश में अपनी विजय का डंका बजाते सिंहाचल आ पहुँचे। सब लोग रामानुज को विष्णु का अवतार मानते थे। इसलिए अनेक तरह से उनका आदर-सत्कार होने लगा।

लेकिन कृष्णाचार्य ने गर्व के मारे उनकी ओर आँख उठा कर भी न देखा। यहाँ तक कि प्रणाम भी न किया।

महात्मा रामानुज से यह सब क्या छिपता! उन्हें मालूम हो गया कि कृष्णाचार्य के मन में किस बात का घमण्ड है! इसलिए वे स्वयं कृष्णाचार्य की ओर मुड़े और विनय के साथ पूछा—'भक्तवर! आप से मेरी एक विनती है। मैं जानता हूँ कि आप रोज़ भगवान के सामने गान करते हैं और भगवान आपके सामने प्रत्यक्ष होकर नृत्य भी करते हैं। इसलिए इस बार जब भगवान आपके सामने प्रत्यक्ष होंगे तो आप उनसे पूछियेगा—'भगवान! बताइए, रामानुज को मुक्ति मिलेगी कि नहीं!'

जब इस प्रश्न का जवाब मिल जाए तब अपने बारे में पूछियेगा—'भगवान! मुझको मुक्ति मिलेगी कि नहीं!' इन दोनों

आभा देवी

प्रश्नों का उत्तर पूछ कर आप कल मुझे बता दीजिए। मेरी आपसे यही विनती है।'

उनकी ये बातें सुन कृष्णाचार्य मन ही मन बहुत खुश हुए। क्योंकि उन्होंने सोचा—'जिस रामानुज के आगे सारा संसार सिर झुकाता है उसी को मेरी कृपा की भीख माँगनी पड़ती है!'

उस रात जब गाना सुन कर भगवान प्रत्यक्ष हुए तो कृष्णाचार्य ने पूछा—'हे भगवान! श्री रामानुज नाम के एक आचार्य आजकल यहाँ आए हुए हैं। वे जानना चाहते हैं कि उनको मुक्ति मिलेगी कि नहीं!'

तब भगवान ने जवाब दिया—'ऐ मेरे प्यारे भक्त! श्री रामानुज तो भगवान के अंश-रूप हैं। वे तो दूसरों को भी मुक्ति दे सकते हैं। इसलिए यह प्रश्न ही व्यर्थ है। तुम्हारी बात सुन कर मुझे हँसी आती है।'

'तो भगवान! और एक बात बताइए। मुझे मुक्ति मिलेगी कि नहीं!' कृष्णाचार्य ने सहम कर सवाल किया।

यह सुन कर भगवान ने कहा—'कृष्णाचार्य! तुम मुझे बहुत प्यारे हो। मैं बहुत चाहता हूँ कि तुम्हें मुक्ति मिले। लेकिन क्या करूँ! मुक्ति देना मेरे हाथ में नहीं है। क्योंकि यह अधिकार तो मैं कभी का रामानुज को दे चुका हूँ। इसलिए अगर तुम सचमुच मुक्ति चाहते हो तो तुम्हें इसके लिए रामानुज की शरण लेनी पड़ेगी।'

भगवान की ये बातें सुन कर कृष्णाचार्य का गर्व चूर-चूर हो गया। उन्हें बहुत गुस्सा आ गया। 'इतने दिन तक मैंने तुम्हारी जो सेवा की, क्या उसका यही फल है? मुक्ति के लिए क्या मुझे दूसरों के आगे हाथ पसारना होगा? भक्ति के वश होकर मैंने इतने दिन

तक तुम्हारा गुण-गान किया। लेकिन आखिर तुम मुझे इस तरह चकमा देना चाहते हो?' कृष्णाचार्य ने भगवान को मनमाना कोसना शुरू किया।

आखिर भगवान उनके कठोर वचन सह न सके। इसलिए उन्होंने कहा—'कृष्णाचार्य! तुम अभी मद-मत्सर आदि दुर्गुणों से दूर नहीं हुए हो। मैंने नहीं सोचा था कि तुम्हारे हृदय में इतना द्वेष भरा हुआ है। तुम कहते हो कि तुमने मेरी सेवा की और गुण-गान गाया। ठीक है; लेकिन मैंने भी तो तुम्हें अपना नृत्य दिखाया है। बस, बदला चुक गया। तुमने अभी बिना सोचे-विचारे क्रोध में आकर मुझे कोसा। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ: जाओ! तुम्हारे रचे गीत नीच लोगों के हाथों में पड़ेंगे और नष्ट हो जाएँगे।' भगवान ने कृष्णाचार्य को शाप दिया।

यह सुन कर कृष्णाचार्य का क्रोध और भी बढ़ गया। उन्होंने कहा—'हे नरसिंह देव! मैंने अपना सर्वस्व तुम्हारे ऊपर अर्पण कर दिया। लेकिन अन्त में तुमने मुझे कहीं का न रखा। मेरा सारा जीवन तुमने नष्ट कर दिया। तो सुनो—अगर मेरी भक्ति सच्ची है तो तुम्हारा सारा मन्दिर और इस पहाड़ का शिखर सात दिन तक आग में जलता रहेगा और एक दम बरबाद हो जायगा।' क्रोध में अन्धे हुए कृष्णाचार्य ने भगवान को शाप दे दिया।

भगवान के शाप के कारण कृष्णाचार्य के सभी गीत नीच लोगों के हाथ पड़ कर नष्ट हो गए। आचार्य के शाप के कारण कुछ दिनों के बाद 'मलिक नेब' नामक मुसलमान सरदार ने एक बड़ी भारी सेना लेकर सिंहाचल पर चढ़ाई कर दी। वह उस मन्दिर को बरबाद कर देना चाहता था।

यह खबर वहीं नज़दीक के रहने वाले महाभक्त, महाकवि श्री कूर्मनाथ को पहले ही मालूम हो गई। तुरन्त वे अकेले दौड़े आए और मन्दिर के अन्दर जाकर, आसन लगा कर, अपनी सुन्दर कविता गा-गाकर भगवान की प्रार्थना करने लगे। उन्होंने नरसिंह का नाम लेकर कवित्त पढ़े और जोशीले शब्दों में मुसलमानों के अत्याचारों का वर्णन करके उनके नाश के लिए विनती की। उन्होंने भगवान को उलहना दिया और कहा कि तुम अपने भक्तों को लुट जाते देख कर भी चुप खड़े रहते हो।

यों कूर्मनाथ ने जब अड़सठ कवित्त पढ़े तो भगवान प्रसन्न हो गए और उन्होंने मुसलमानों को मार भगाने के लिए भौंरों की एक सेना खड़ी कर दी।

भौंरों के वे झुण्ड मुसलमानों पर टूट पड़े और उनको डंक मारने लगे। बेचारे मुसलमानों को न सूझा कि इस विचित्र शत्रु का कैसे सामना किया जाए। वे तुरन्त सिर पर पैर रख कर भागने लगे। तलवारें म्यान में ही रह गईं। उन्हें बाहर निकालने तक का मौका न मिला।

इस तरह भौंरों ने दस मील तक उनका पीछा करके मार भगाया। मुसलमानों की सेना ने यों भागते भागते विशाख-पत्तन से आधे मील की दूरी पर एक टीले पर जाकर दम लिया। बस, उस दिन से उस टीले का नाम भौंरों का टीला पड़ गया। भौंरों का टीला आज भी उसी जगह है। आजकल वह मरघट के रूप में काम आता है। इस तरह कवि कूर्मनाथ की ओज भरी वाणी से सावधान होकर भगवान नरसिंह ने मुसलमानों को मार भगाया। पीछे कूर्मनाथ ने इन कवित्तों को लिख कर 'नरसिंह-शतक' नाम की एक पुस्तक रची।
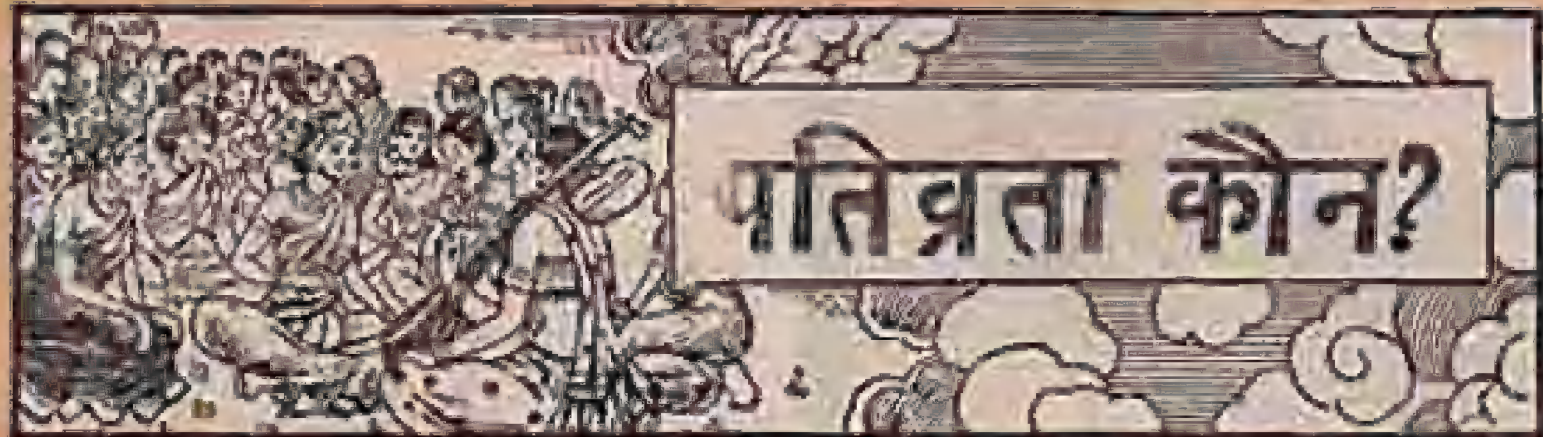
एक समय दुनिया की सभी पतिव्रता स्त्रियाँ एक जगह जमा हुईं। वे एक सभा करना चाहती थीं। जमा तो हुईं। लेकिन सभा न हो सकी। क्योंकि सभा के लिए एक सभापति (या सभापत्नी!) की जरूरत होती है।

अब वहाँ सवाल यह उठा कि किसको यह पद दिया जाए! बहुत सोचने-विचारने पर भी यह सवाल हल न हुआ। बहुत सी गुट-बंदियाँ हुईं। गरमागरम बहसें हुईं और तीन चार घण्टे तक बैठने पर भी कोई निश्चय न हो सका। तब सभी उठ कर अपने अपने घर चली गईं।

लेकिन झगड़ा यहीं खतम न हुआ। सरस्वती ने जाकर अपने पति ब्रह्माजी से कहा—'देखा आपने उन सबका दुस्साहस! क्या मैं सब पतिव्रताओं में बड़ी नहीं हूँ! अगर मैं सबसे बड़ी सती न होती तो आप मुझे अपनी जीभ पर क्यों रखते?'

उधर लक्ष्मी ने भी अपने पति भगवान विष्णु से शिकायत की—'इस संसार में मुझसे बढ़ कर सती और कौन है! नहीं तो आप मुझे अपनी छाती पर जगह क्यों देते!'

पार्वती ने भी अपने पति से जाकर पूछा—'क्या मैं सबसे बड़ी सती नहीं हूँ! इसीलिए तो आपने मुझे अपना आधा अङ्ग ही दे डाला है।'

सीता, सावित्री, अरुंधती, अनसूया और सुमति आदि सतियों ने भी अपने पतियों से जाकर यही शिकायत की कि वे सबसे बड़ी पतिव्रता क्यों न मानी गईं! सभी का मुँह लटक गया था। इतने में नारद जी कहीं से पधारे। उन्होंने हरेक पतिव्रता के घर जाकर कहना शुरू किया—'देवी! मुझे मालूम हुआ है कि तुमसे भी बड़ी पतिव्रता भूलोक पर है।'

'मैं अपने पति को काल के गाल से बचा लाई। क्या वह मुझसे भी बड़ी पतिव्रता है!' सावित्री ने पूछा।

विजयेंद्र

'मैंने अपने शील की रक्षा के लिए तीनों लोक-पालकों को शिशु बना कर दूध पिलाया। क्या वह मुझसे भी बड़ी सती है?' अनसूया ने कहा।

'मैंने अपने पति के प्राण बचाने के लिए सूरज को निकलने से रोक दिया। बताओ, क्या वह मुझसे भी महिमा वाली है।' सुमति ने सवाल किया।

बाकी औरतों ने भी इसी तरह के सवाल किए। 'हाँ, हाँ, वह तुम सबसे बड़ी पतिव्रता है।' नारद ने निश्चित स्वर में कहा। अब इन सभी औरतों के मन में कुतूहल हुआ कि जाकर देखें, वह कौन है? कैसी है?

'अगर तुम सभी जत्थे बाँध कर जाओगी तो वह डर के मारे प्राण छोड़ देगी! इसलिए एक एक करके जाकर देख आओ।' नारद ने सलाह दी।

नारद से उस सती का पता जान कर पहले पार्वती उससे भेंट करने चलीं। नारद ने जिस घर का पता दिया था वह एक छोटी सी झोंपड़ी थी। दरवाजे पर टट्टी लगी हुई थी। पार्वती ने खड़ी होकर पुकारा—'देवी! जरा दरवाजा खोलो। मैं पार्वती तुम्हारे घर आई हूँ।'

लेकिन उस भली औरत ने बिना दरवाजा खोले ही जवाब दिया—'देवी जी! मुझे मालूम नहीं था कि आप हमारे घर पधारेंगी। नहीं तो पहले ही अपने पति से पूछ लेती कि दरवाजा खोलूँ या नहीं! दुर्भाग्यवश आज वे घर पर नहीं हैं। रात को आएँगे तो मैं उनकी इजाजत ले लूँगी और कल दरवाजा खोलूँगी। इसलिए आप कृपा करके कल फिर आइए!'

पार्वती चकित होकर चुपचाप लौट गईं।

उस झोंपड़ी में रहने वाली महा-सती का नाम गौरी था। वह उस गाँव में घास छील कर जीविका चलाने वाले गंगू की स्त्री थी।

जब शाम को गंगू घास का गट्ठर बेच कर घर लौट आया तो गौरी ने पार्वती की बात उसको सुनाई और दूसरे दिन दरवाजा खोलने की इजाजत माँगी। गंगू ने कोई एतराज न किया।

दूसरे दिन पार्वती फिर उस झोंपड़ी के पास आई। माँ को कहीं जाते देख कर गणेश ने ज़िद की कि मुझे भी साथ लेते चलो! इसलिए पार्वती आज उसे भी साथ लेती आई थी।

गौरी ने पार्वती की आवाज सुन कर दरवाजा खोलना चाहा कि इतने में उसे गणेश की आवाज भी सुनाई दी। 'देवी! आपके साथ और कौन आए हैं?' उसने पूछा।

'और कोई नहीं, मेरा बेटा गणेश है।' पार्वती ने कहा।

तब गौरी ने बिना किवाड़ खोले ही जवाब दिया—'देवी! रात मैंने पति की इजाजत तो ले ली थी। लेकिन उन्होंने आप एक के लिए ही इजाजत दी थी। मुझे नहीं मालूम था कि आपके बेटे भी आ रहे हैं! नहीं तो, उनके लिए भी इजाजत ले लेती। आज रात को अपने पति से आप दोनों के लिए दरवाजा खोलने की इजाजत ले लूँगी। इसलिए आप दोनों कल पधारिए!' बेचारी पार्वती उस दिन भी यों ही लौट गई।

दूसरे दिन जब वे उस पतिव्रता से मिलने चलीं तो कार्तिक ने भी आना चाहा। लेकिन पार्वती को एक बार अनुभव हो चुका था। इसलिए उन्होंने उसे आने नहीं दिया।

गौरी ने इस बार पार्वती के आते ही दरवाजा खोल कर बड़ी आव-भगत की। पार्वती ने अन्दर आकर चारों ओर देखा। उन्हें उस झोंपड़ी की सफाई देख कर बहुत अचरज हुआ। लेकिन सामान ज्यादा न था। एक तिपाई थी और एक दरी बिछी हुई थी।

एक ओर एक हाँडी थी। बगल में चूल्हा जल रहा था। एक ओर एक तवा था और एक थाली में गुँथा हुआ आटा रखा था। एक ओर छत से एक रस्सी लटक रही थी और दीवार पर एक सोंटा।

पार्वती ने बातचीत शुरू करने के ख्याल से एक एक चीज़ की ओर इशारा करके पूछना शुरू किया कि वह क्या काम आती है!

'यह तिपाई मेरे पति के बैठने के लिए है। जब वे बहुत थके हुए होते हैं तो खाट पर दरी बिछा कर लेट जाते हैं। अगर वे भूखे हों तो उस हाँडी में भात है। उनका रोटी खाने का मन हुआ तो आटा भी तैयार है। चूल्हे पर तवा चढ़ा दूँगी और पल भर में रोटियाँ सेंक दूँगी।' गौरी ने पार्वती को समझाया।

पार्वती को उस गरीबिन ने पति के आराम के लिए जो इन्तज़ाम किए थे, देख कर बहुत खुशी हुई। लेकिन उनकी समझ में न आया कि वह रस्सी और सोंटा किसलिए है। जब उन्होंने यही पूछा तो गौरी ने जवाब दिया—'जब पति को किसी कारण मुझ पर गुस्सा आ जाता है तो वे मुझे उस रस्सी से बाँध देते हैं और उस सोंटे से मारते हैं। ज़रूरत पड़ने पर रस्सी और सोंटा कहाँ खोजने जाएँगे? इसलिए मैंने उन्हें ऐसी जगह रख दिया जहाँ तुरंत निगाह पड़ जाए।'

ये बातें सुन कर पार्वती के अचरज का ठिकाना न रहा। उन्होंने सोचा—'संसार में बहुत सी प्रसिद्ध पतिव्रताएँ हैं। यह सच है कि वे पति के हाथ मार खाकर चुप रह जाती हैं। लेकिन ऐसी सती और कोई न होगी जो रस्सी और बेंत इस काम के लिए पहले ही से लाकर रखे। नारद का कहना सच है। गौरी ही संसार की सबसे बड़ी सती है।' उन्होंने लौट कर गौरी की कहानी सब को सुनाई और बहुत सराहा।

गोदावरी के तट पर पण्डितभट्ट नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके एक एक करके सात बेटे पैदा हुए। लेकिन एक के बाद एक सभी मरते चले गए। आठवीं बार जब उसकी स्त्री के गर्भ रह गया तो उसने सोचा—'क्या ठिकाना! इस बार का शिशु भी जिएगा या नहीं? भगवान! मैंने कौन सा पाप किया है जिसके लिए मुझे यह कठोर दण्ड मिल रहा है!' यह सोच कर वह आँसू बहाने लग गई। उसी समय एक फकीर उसके घर के सामने आया और 'अल्लाहो अकबर' चिल्लाने लगा।

यह सुनते ही पण्डितभट्ट की स्त्री ने उस फकीर से कहा—'अगर सचमुच तुम्हारा अल्लाह बड़ा है तो उससे मेरा दुख दूर करने को कहो!'

'खुदा जरूर तुम्हारी भलाई करेगा। मैं आज ही मसजिद में जाकर तुम्हारे लिए दुआ माँगूगा। इस बार तुम्हारे जो बच्चा पैदा होगा, वह तन्दुरुस्त, खूबसूरत, होशियार और बहुत दिन तक जीने वाला होगा।' उस फकीर ने जवाब दिया और तुरन्त मसजिद में जाकर इबादत करने लगा। वह फकीर ऐसा पुण्यात्मा था कि अल्ला ने उसकी दुआ तुरन्त पूरी कर दी।

कुछ ही दिनों बाद पण्डितभट्ट की स्त्री के एक बालारुण सा बच्चा पैदा हुआ। माता-पिता ने उसका नाम जगन्नाथ रखा और बड़े प्रेम से उसका लालन-पालन करने लगे। वह दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा। थोड़े ही समय में उसने चारों वेद पढ़ लिए और सब विद्याएँ सीख लीं। तीर चलाने में भी बड़ा चतुर हो गया।

उस समय दिल्ली का बादशाह भी पण्डितभट्ट की सी ही मुसीबत में फँसा हुआ था। उसकी बेगम के भी एक एक कर सात बच्चियाँ पैदा हुईं; लेकिन उनमें से एक भी जिन्दा न रही। जब आठवीं बार गर्भ रहा, तब वह बहुत

बनवारी दास

शोक करने लगी। राह चलते हुए एक साधू ने उसे ढाढ़स देकर कहा—'माँ! तुम काशी के विश्वनाथ की पूजा करो। वे जरूर तुम्हारा दुख दूर करेंगे।'

उस बेगम के मन में यह संकोच न हुआ कि मुसल्मान होकर वह हिन्दू देवता की पूजा क्यों करे! उसने साधू के उपदेश के अनुसार काशी-विश्वनाथ की प्रार्थना की। भगवान ने उसकी प्रार्थना सुन ली। उसके एक चाँद सी सुन्दर लड़की पैदा हुई। उस लड़की का नाम रखा गया लवङ्गी। अब बेगम श्रद्धा-भक्ति से हिन्दू-पण्डितों को बुलवाने और संस्कृत की पुस्तकों में भगवान महादेव की महिमा के वर्णन सुनने लगी। जब लवङ्गी बड़ी हो गई तो बेगम ने उन्हीं पण्डितों को उसे पढ़ाने के लिए रखा। लवङ्गी की बुद्धि बड़ी पैनी थी। इसलिए उसने कुछ ही दिनों में वेद-शास्त्र पढ़ कर संस्कृत भाषा में बड़ी विद्वत्ता प्राप्त की। सयानी होते ही लवङ्गी के मन में काशी-विश्वनाथ के दर्शन कर आने की इच्छा पैदा हुई।

लेकिन बादशाह ने कहा—'हम हिन्दुओं के मंदिर में क्यों जाएँ? क्या अपने अल्लाह को छोड़ कर दूसरों के भगवान की पूजा करना गुनाह नहीं है?'

'पिताजी! हमारे भगवान और उनके भगवान अलग अलग नहीं हैं। खुदा तो सबका एक ही होता है। हम उसे अल्लाह कहते हैं और हिन्दू लोग उसे 'ईश्वर' कहते हैं। इसके सिवा और तो कोई फ़र्क नहीं। मुझे काशी-विश्वनाथ के दर्शन कर आने दीजिए।' लवङ्गी ने कहा।

उसकी बातें बादशाह को अच्छी न लगीं। लेकिन इकलौती बेटी का आग्रह टाल न सका। जब बादशाह किसी तरह राजी हुआ, तब एक दूसरी मुसीबत आ खड़ी हुई। हिन्दू लोग यह खबर सुन कर क्रोधित हुए। 'एक मुसल्मान लड़की हमारे पवित्र मंदिर में आए? ऐसा कभी

हुआ है ! क्या भगवान का मंदिर भ्रष्ट न हो जाएगा !' बस, हिन्दुओं में घोर खलबली मच गई। यह बात जब बादशाह के कानों में पहुँची तो वह आग-बबूला हो उठा। 'मेरी बिटिया मंदिर में जाना चाहे और ये लोग उसे जाने न दें ! अच्छा, देखूँगा मैं, कौन उसे रोकता है !' बस, बादशाह ने एक बड़ी फौज के साथ लवङ्गी को विश्वनाथ के दर्शन के लिए भेज दिया।

यह खबर बिजली की तरह देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गई। दक्षिण में गोदावरी के किनारे पण्डितभट्ट के पुत्र जगन्नाथ ने भी यह खबर सुनी। अभी वह पचीसवें साल में आ गया था। जवानी का खौलता हुआ खून उसकी धमनियों में बह रहा था ! उसने सोचा—'बादशाह के खिलाफ खड़े होने की ताकत क्या किसी हिन्दू में नहीं रही ! क्या सारी हिन्दू-जाति नपुंसक बन गई ! अच्छा, देखूँगा मैं ! शाहजादी कैसे उस मंदिर में प्रवेश करती है !' यह निश्चय कर उसने तुरन्त काशी की यात्रा कर दी। उसको जाते देख कर बहुत से लोग उसके साथ हो गए। धीरे धीरे उसके नेतृत्व में भी एक सेना इकट्ठी हो गई। यह सेना ठीक समय पर काशी पहुँची और बादशाह की फौज के सामने जाकर खड़ी हो गई।

'अगर बादशाह की फौज हमला करे तो तुम लोग उसका डट कर सामना करो। मैं मंदिर के दरवाजे पर खड़ा होता हूँ।' यह कह कर जगन्नाथ नङ्गी तलवार लेकर मंदिर के द्वार पर आ खड़ा हुआ।

लवङ्गी ने दोनों फौजों को देख कर सोचा—'मेरे कारण खून खराबी होगी और इतने लोगों की जान जाएगी ! ईश्वर के घर में यह सब क्यों हो ! क्यों न मैं दिल्ली लौट जाऊँ और सारा झगड़ा ही खतम हो जाए !' लेकिन इतनी दूर से आकर भगवान के दर्शन

किए बगैर लौट जाना भी उसको पसन्द न था। इसलिए वह सोच में पड़ी कि बिना खून-खराबी के किस तरह उसका काम बन जाए? सोचते-सोचते उसे एक उपाय सूझ गया। औरत की पोशाक छोड़ कर उसने एक राजपूत का वेष बनाया और चुपके से मंदिर में चली गई।

हिन्दुओं का आचार है कि मंदिर में जाते वक्त पगड़ी और जूते उतार लेते हैं या बाहर ही छोड़ देते हैं।

लेकिन यह बात बेचारी लवङ्गी को क्या मालूम थी? वह यों ही अन्दर जाने लगी तो द्वार पर खड़े जगन्नाथ ने डाँट कर कहा—'कौन हो जी तुम? रुक जाओ! बिना जूते, पगड़ी उतारे मंदिर में चले जा रहे हो? मूरख कहीं के!' यह कह कर उसने लवङ्गी का हाथ पकड़ कर रोक लिया। हाथ पकड़ते ही लवङ्गी लजा गई और ठिठक कर पीछे हट गई।

यह देख कर जगन्नाथ को और भी शक हो गया। लेकिन इतने में लवङ्गी ने अपने आपको ज़रा सम्हाल कर कहा—'महाशय! आपने मेरी हँसी उड़ाई कि मैं जूते और पगड़ी पहने ही मंदिर में चला जा रहा हूँ। आपको देखने से जान पड़ता है कि आप ब्राह्मण हैं। फिर आप यहाँ पहरेदार का काम क्यों कर रहे हैं?'

'मैं पहरेदार नहीं; एक धर्म-वीर हूँ। मुसलमान शाहजादी जबर्दस्ती इस मंदिर में घुसने आ रही है। मैं उसको रोकने के लिए यहाँ पहरा दे रहा हूँ।' जगन्नाथ ने छाती फुला कर जवाब दिया।

'लेकिन ब्राह्मण के हाथ में यह तलवार शोभा नहीं देती।' लवङ्गी ने कहा।

'कहाँ लिखा है कि ब्राह्मण हथियार न पकड़े? क्या परशुराम और द्रोण आदि ने अस्त्र नहीं पकड़ा था? अच्छा, यह शास्त्रार्थ और वाद-विवाद पीछे होगा! अभी आप हट जाइए! दूसरे लोग दर्शन करने आ रहे हैं।' जगन्नाथ ने कहा।

'अच्छा! यहाँ तक तो आ गया हूँ। जरा भगवान की प्रार्थना भी कर लूँ।' यह कह कर लवङ्गी ने भगवान की ओर दृष्टि फिरा कर संस्कृत के चार श्लोक पढ़े। हर श्लोक के अन्त में 'जन्माब्धि जले पतिताम्, अम्बां कृपया' आता था। इसका माने है—'मैं जन्म से ही संसार-सागर में गिरी हुई हूँ। कृपा करके बचाओ!'

तुरंत जगन्नाथ के मन में सन्देह हो गया। 'अगर यह मर्द होता तो 'गिरी हुई हूँ' क्यों कहता! मर्द के वेश में जरूर यह कोई औरत है!' यह सोच कर जगन्नाथ ने पूछा—'सच बताओ! तुम औरत हो कि नहीं!'

लेकिन लवङ्गी निरी बोदू तो थी नहीं! उसने कहा—'ये श्लोक मेरे बनाए हुए नहीं हैं। किसी औरत ने रचे हैं। मैं केवल पाठ कर रहा हूँ।' यह कह कर उसने सोचा कि अब अधिक देर यहाँ रहने से मेरा भेद खुल जाएगा। इसलिए वह शीघ्रता से बाहर चली गई।

उसके चले जाने के बाद जगन्नाथ को निश्चय हो गया कि वह पुरुष-वेश-धारिणी युवती अवश्य लवङ्गी थी। उसकी सुन्दरता, चतुरता और विद्वता आदि का ध्यान आते ही वह अपने आपको और दुनिया को भूल गया। वह काशी क्यों आया था, इसका ख्याल भी उसे न रहा। जिसने अब तक लवङ्गी को मंदिर में न जाने देने का संकल्प कर लिया था, वही अब जी-जान से उस पर न्योछावर हो गया।

उधर लवङ्गी भी जब अपने खेमे में पहुँची तो उस युवक के बारे में ही सोचती रही। वह भी उस पर मुग्ध हो गई थी। आखिर उसने बादशाह से अपनी कामना कह सुनाई।

बादशाह ने उसे मना करके बहुत समझाया-बुझाया। लेकिन वह अपनी बात पर अड़ी रह

गई। लवङ्गी ने कहा—'भगवान के सामने मन से हम दोनों का ब्याह तो हो गया है! अब बाहर से रोक कर आप क्या कीजिएगा?'

आखिर लाचार होकर बादशाह ने लवङ्गी की बात मान ली। बस, दोनों फौजें बारातों में बदल गईं। खूब जल्सा हुआ। इस ब्याह से लोगों के मनों में एक नया प्रकाश आया। 'अल्लाह और ईश्वर एक ही भगवान के नाम हैं। भगवान की नजर में हिन्दू-मुसलमान सब बराबर हैं। इसलिए अगर दोनों आपस में लड़ना-झगड़ना छोड़ दें तो कितना अच्छा हो!' उन्होंने सोचा। लेकिन बहुत से लोग इसके खिलाफ भी थे। उनकी नज़र में यह बड़ा भारी पाप भी था।

उन्होंने सोचा—'यद्यपि जगन्नाथ महा-पण्डित और कवि है, तो भी यह मुसलमान की लड़की से ब्याह करके भ्रष्ट और अपवित्र हो गया है।' उन सबने मिल कर उसे जात से निकाल दिया।

लेकिन जगन्नाथ उनकी बातें सुन कर खिलखिला कर हँस दिया और बोला—'ऐ पगलो! मैं अपवित्र नहीं हुआ हूँ। आओ मेरे साथ! अभी यह साबित किए देता हूँ।' यह कह कर वह उन सबको अपने साथ गङ्गा के किनारे बुला ले गया और वहाँ मधुर स्वर से जगत-पावनी गङ्गा की स्तुति करने लगा।

गङ्गा के उस घाट पर सौ सीढ़ियाँ थीं। जगन्नाथ एक-एक करके श्लोक पढ़ते जाता था और गङ्गा एक-एक सीढ़ी चढ़ती आती थी। ज्यों ही सौ श्लोक पूरे हुए, गङ्गा सीढ़ियों के ऊपर आ गईं और जगन्नाथ और लवङ्गी को गोद में समेट कर बोली—'तुम दोनों को जो लोग अपवित्र कहते हैं, वे खुद अपवित्र हैं। अपवित्रों के बीच तुम्हें नहीं रहना चाहिए।' यह कह कर वह उन दोनों को उठा ले गईं; जाने कहाँ!

जनता मुँह बाए खड़ी देखती रह गई। प्रेम की यह अद्भुत लीला!

एक समय की बात है। पाटलीपुत्र पर चन्द्रगुप्त का राज था। चन्द्रगुप्त ने अपने विशाल राज्य को अनेक प्रांतों में बाँट दिया था। एक एक प्रांत का एक एक शासक था। उसके सभी शासक अपनी सन्तान की तरह प्रजा का पालन करते थे। उनके कारण राजा का यश और भी बढ़ गया।

लेकिन विदर्भ प्रांत के शासक को लोग रिश्वतखोर और जालिम कहते थे। इसलिए राजा ने निश्चय किया कि उसको उस पद से हटा कर उस जगह पर एक अच्छे न्यायी शासक को नियुक्त किया जाए।

इतने में एक दिन कुछ लोगों ने राजा के पास आकर कहा—'हुजूर! यहाँ से तीन कोस पर एक जङ्गल है। उस जङ्गल में ढोर चराने वाला एक ग्वाला है। उसका नाम धरमू है। उस धरमू का भाग्य क्या कहा जाए कि उसके बराबर इन्साफ कोई नहीं कर सकता। वह कानून की गहरी-से-गहरी गुत्थियाँ भी यों ही सुलझा देता है। बस, दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है। इसलिए अब सब लोग अदालतों में जाना छोड़ कर उस जङ्गल में धरमू के पास जाने लग गए हैं।'

उनकी बातें सुन कर राजा को बहुत अचरज हुआ। 'तो उस ग्वाले पर लोगों की इतनी श्रद्धा हो गई! तब जरूर उसमें कुछ न कुछ विशेषता होगी!' यह सोच कर उसने जङ्गलों में रह कर ढोर चराने वाले उस धरमू को अपने दरबार में बुला भेजा। उसने बेशकीमती पोशाक वगैरह देकर उसका सत्कार किया और एक आसन पर बिठा कर कहा—'भाई धरमू! मैं तुम्हारे अच्छे गुणों और तुम्हारी न्यायशीलता की तारीफ सुन चुका हूँ। इसलिए मेरी इच्छा है कि तुम्हें विदर्भ प्रांत का शासक बना दूँ!'

'हुजूर की जो मर्जी! लेकिन मुझमें उतनी काबिलियत कहाँ! मैं कोई बड़ा बुद्धिमान तो हूँ नहीं! कहीं लोग मुझे शासक बनते देख कर मजाक न उड़ाने लग जायँ!' धरमू इस प्रकार अपनी असम्मति प्रगट करने लगा।

लेकिन राजा का हुक्म टाला नहीं जा सकता था। इसलिए उसे अपना मुँह बन्द करके वह जिम्मेदारी लेनी पड़ी।

धरमू के शासक बनने के बाद भी लोग उसकी प्रशंसा करते ही रहे। लेकिन कुछ दिन बाद कुछ लोगों ने राजा के पास जाकर कहा—'हुजूर! धरमू अब पहले का सा नहीं रह गया है। उसका स्वभाव बदल गया है। वह अब खूब रिश्वत लेने लग गया है!'

उनकी शिकायत सुन कर राजा ने कोई कार्रवाई नहीं की। उसने कहा—'ऊँचे पद को देख कर हरेक के मन में ईर्ष्या पैदा होती है। इसलिए लोग अकसर झूठी बातें फैलाया करते हैं। इसलिए, जब तक मैं अपनी आँखों से न देख लूँगा, तब तक इन बातों पर कोई विश्वास न करूँगा।'

'हुजूर! ये झूठी अफवाहें नहीं हैं! धरमू आजकल हाथी पर चढ़ कर राज में घूमने जाता है। उसके पीछे सिपाही घोड़ों पर चढ़ कर चलते हैं। खैर, इसमें तो कुछ नहीं! यह सब तो जरूरी है। लेकिन सब के पीछे कुछ नौकर एक काठ का सन्दूक लिए चलते हैं। क्या हुजूर ने कभी वह सन्दूक देखा है?' उन लोगों ने राजा से पूछा।

इस बार राजा के मन में भी कुछ खटका पैदा हो गया। सन्दूक की बात सुन कर उसके मन में कुतूहल भी पैदा हुआ कि चल कर देखें तो सही—उस सन्दूक में क्या है? इस ख्याल से राजा खुद विदर्भ प्रांत की ओर चल पड़ा। बीच में ही उसे धरमू दल-

बल के साथ आता दिखाई दिया। सब के पीछे नौकरों के हाथों में एक काठ के सन्दूक पर भी उसकी नजर पड़ी। यह देख कर राजा के मन में तुरन्त विचार उठा कि उसने जो कुछ सुना, सब सच है। धरमू सचमुच रिश्वत लेने लगा है। वह हराम का पैसा रखने के लिए यह सन्दूक पीछे पीछे लिए घूमता है। धीरे धीरे उसके मन में इसका दृढ़ विश्वास हो गया। आखिर उसने धरमू को रोका और बातों के सिलसिले में उससे कहा—

'क्यों धरमू! तुम हमेशा अपने साथ बहुत सा रुपया लिए चलते हो क्या! जरा हमें भी दिखाओ, उस सन्दूक में क्या है!' यों हँसी-खेल में ही राजा ने उस सन्दूक का ढक्कना खुलवा कर देखा।

लेकिन यह क्या! उस सन्दूक में तो राजा के दरबार में आने के समय धरमू जो फटे-पुराने चीथड़े पहने हुए था, उन के सिवा और कुछ न था। सब लोग हैरान हो गए यह देख कर।

आखिर राजा ने धरमू से उस सन्दूक का रहस्य जानना चाहा।

तब धरमू ने कहा—'हुजूर! मैं अचानक एक भिखारी से बड़ा अमीर बन गया। मुझे आशङ्का हुई कि इससे कहीं मेरा मिजाज भी आसमान पर न चढ़ जाए। इसलिए मैं ये कपड़े एक सन्दूक में रख कर हमेशा साथ लिए चलता हूँ, जिससे मुझे पहले की बातें याद आती रहें। अगर मैं बीते दिन भूल जाता तो जरूर मेरा भी पतन हो जाता। तब मैं लोगों के लिए सच्चा न्याय न कर पाता। लेकिन इन्हीं कपड़ों की कृपा से मैं बच गया।'

तब राजा मन ही मन बहुत लज्जित हुआ और उसने धरमू की बहुत प्रशंसा की।
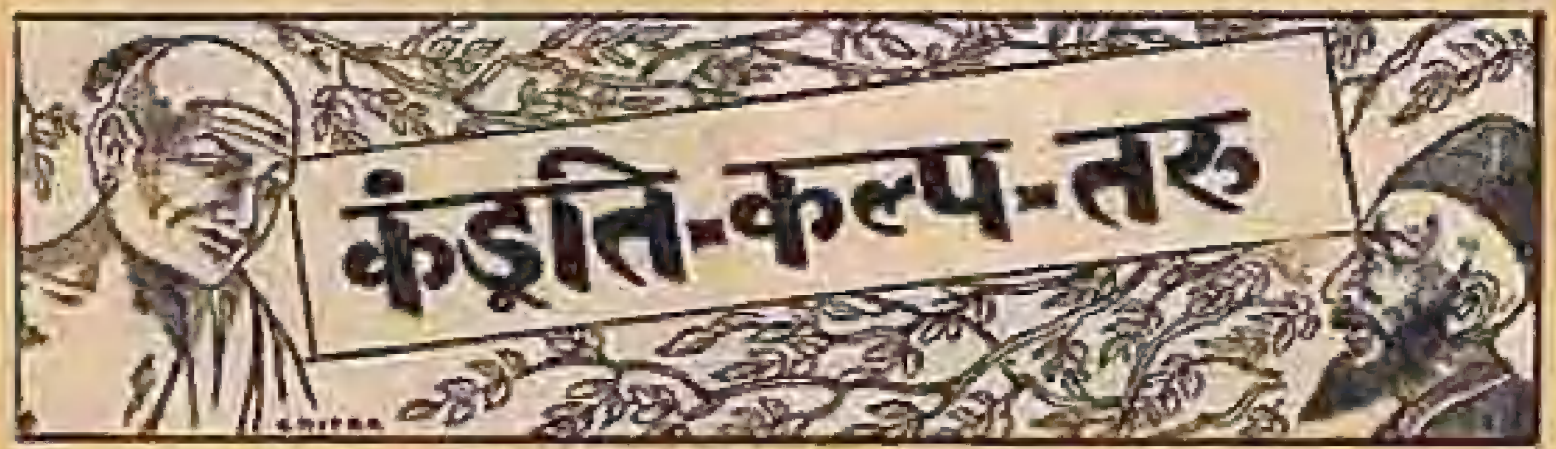
उदय-नगर नामक गाँव में उमानाथ नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह धर्म-कर्म में बड़ा कट्टर था। उमानाथ दलाली करके अपनी रोटी कमाता था। यानी आस-पास के गाँवों में कहाँ कौन सी फसल होती है, किसके पास कितना अनाज जमा है, आदि बातें जान-बूझ कर वह खरीददारों को इसकी सूचना देता और सौदा पटा कर अपनी दलाली के पैसे लेता था।

इस तरह जब किसी को किसी चीज़ की जरूरत होती तो वह सीधे उमानाथ के पास जाता था। उमानाथ थोड़े ही समय में सस्ते भाव पर वह चीज़ उसे जुटा देता था।

इस तरह बहुत दिन बीत गए। उमानाथ मेहनत करके सौदा करने वालों को सब तरह के सुभीते देता था; इस कारण थोड़े ही दिनों में उमानाथ का नाम चारों ओर फैल गया। दूर दूर के बहुत से लोग उसके पास आने लगे।

एक दिन हुसेन नाम का एक मुसलमान व्यापारी उमानाथ की बड़ाई सुन कर बहुत दूर से उदय-नगर आया और सीधे उमानाथ के घर जाकर बोला—'पण्डित जी! हमें पचास बोरे मूँगफली चाहिए। हमारा काम जल्दी होना चाहिए। आप जो दलाली माँगेंगे हम देने को तैयार हैं।'

उमानाथ ने कहा—'अच्छी बात है, हुसेन जी! लेकिन एक दिक्कत है। अगर दस पाँच बोरे होते तो इसी गाँव में मिल जाते। आप पचास बोरे चाहते हैं। इसलिए दस पाँच गाँवों में घूम कर माल जमा करना होगा। हमें तड़के ही उठ कर चल देना होगा।'

हुसेन ने भी उसकी बात मान ली।

दूसरे दिन उमानाथ मुँह अँधेरे उठा और हुसेन को साथ लेकर चल पड़ा। दस मील चलने पर सवेरा हुआ। पास में ही स्वच्छ

रमाबाई

जल से भरा हुआ एक सरोवर देख कर उमानाथ ने हुसेन से कहा—'हुसेन जी! इस तालाब में नहा-धोकर सन्ध्या-वन्दन कर लेता हूँ; आध घंटे में आ जाऊँगा। तब तक आप यहीं बैठिए।' यह कह कर वह चला गया।

ठीक उमानाथ के सन्ध्या-वन्दन करते समय हुसेन किनारे पर बैठ कर नमाज़ पढ़ने लगा।

उमानाथ ने ऊपर आकर हुसेन को नमाज़ पढ़ते देखा तो मन में बहुत खुश हुआ। उसने सोचा—'भाषा में फ़रक है। लेकिन सभी धर्म वाले एक ही भगवान की पूजा करते हैं। मेरा सन्ध्या-वन्दन और हुसेन का यह नमाज़ दोनों एक ही भगवान की पूजा हैं। वाह! भगवान की लीला कितनी विचित्र है!' यह सोच कर उमानाथ अचरज में पड़ गया। भगवान की लीला के कारण संसार में कैसे कैसे धर्म पैदा हो गए! वह यों सोच ही रहा था कि इतने में उसकी नजर अचानक वहीं किनारे पर उगे हुए एक तुलसी के पौधे पर पड़ी। तुरन्त उमानाथ ने बड़े हर्ष से उस पौधे के चारों ओर की जगह झाड़-बुहार कर साफ़ कर दी। तालाब से पानी लाकर उस जगह छिड़क दिया और बड़ी भक्ति के साथ उस पौधे को प्रणाम किया।

इधर नमाज़ पढ़ कर हुसेन ने उमानाथ को तुलसी की पूजा करते देखा तो उसे बड़ी हँसी आ गई। वह खिलखिला कर हँसते हुए बोला—'क्यों उमानाथ! तुम लोग पेड़-पौधों, जङ्गलों-झाड़ियों को भी प्रणाम करते हो! तुम्हारा धर्म भी कोई धर्म है!'

लेकिन उमानाथ इससे जरा भी गुस्सा न हुआ। उसने बड़े शांत-भाव से कहा—'हुसेन जी! हम हिन्दुओं का विश्वास है कि हमारे भगवान नारायण और उनकी पत्नी

लक्ष्मी देवी इसी तुलसी के पौधे में निवास करते हैं। इसी से हम लोग घर घर तुलसी के पौधे लगाते हैं और बड़े प्रेम से उसकी पूजा करते हैं। सच पूछा जाए तो एक भी हिन्दू का घर ऐसा न होगा, जिसमें तुलसी का पौधा न पलता हो। हम लोग तुलसी के पौधे से बहुत लाभ भी उठाते हैं।' उमानाथ ने तुलसी का बहुत गुण-गान किया।

लेकिन ये बातें हुसेन को कैसे भली लगतीं! वह इतने से चुप रह जाता तो कोई हर्ज न था। चुपचाप अपना काम करके चला जाता। लेकिन नहीं; उमानाथ की बातें सुन कर उसे बड़ा क्रोध आ गया। 'क्या कहते हो! क्या इस पौधे में तुम्हारा भगवान रहता है! लो, अभी इस पौधे को मैं उखाड़ डालता हूँ। देखूँ, तुम्हारा भगवान मेरा क्या बिगाड़ता है!' ऐसा कहते कहते उसने तैश में आकर उस पौधे को उखाड़ डाला। फिर उसकी पत्ती पत्ती नोची और उसको मसल कर और रस निकाल कर सारे बदन में लगा लिया। फिर मूछों पर ताव देते हुए गर्व के साथ उसने पूछा—'अब कहो, कहाँ गया तुम्हारा भगवान! वह मेरा क्या बिगाड़ सका!'

उमानाथ ने ऐसे बहुत घमण्डी देखे थे। इसलिए वह यह अपमान देख कर भी विचलित न हुआ। 'इसे समय आने पर एक सबक सिखाना चाहिए!' उसने मन ही मन कहा। उसने सोचा कि बेवकूफ लोग ही जल्दीबाजी करते हैं। यह सोच कर वह मौके की राह देखने लगा।

दोनों कुछ दूर और चले। चट्टानों की आड़ में एक कानकुरी का पौधा (एक पौधा जिसके छूने से बदन खुजलाता है।) उमानाथ की नजर में पड़ा। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। चतुर उमानाथ तुरन्त उस तरफ दौड़ा और जाकर उस पौधे के चारों ओर की जगह

झाड़ने-पोंछने लगा। फिर उसने अपने लोटे से पानी लेकर चारों ओर छिड़क दिया और बड़ी भक्ति से उसको बार बार प्रणाम करने लगा।

सुनहरी धूप में वह कानकुरी का पौधा झलमल करता हुआ, देखने में बड़ा सुन्दर लग रहा था। उमानाथ को उसे प्रणाम करते देख कर हुसेन ने फिर पहले की तरह मखौल उड़ाते हुए कहा—'अजी पण्डित जी! कहीं आप पागल तो नहीं हो गए हैं! राह में जो भी पौधा दिखाई देता है उसी को प्रणाम करने लगते हैं!'

तब उमानाथ ने बड़ी गम्भीरता से जवाब दिया—'हुसेन जी! यह पौधा हम हिन्दुओं के लिए तुलसी से भी अधिक पवित्र है। इसे हम संस्कृत में 'कंडूति-कल्प-तरु' (याने खुजली देने वाला पेड़) कहते हैं। इस पौधे में तो हमारे भगवान का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। आज मेरे सौभाग्य से यह पौधा यहाँ मिल गया। नहीं तो वह कहीं नहीं मिलता। इसलिए मैं बड़ी निश्चलता से इसका ध्यान करना चाहता हूँ। तुम थोड़ी देर के लिए मुझे न छेड़ो। अगर तुमने मुझे छेड़ा और इस पौधे की कुछ भी निन्दा की तो मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा।'

उसकी ये बातें सुन कर हुसेन और भी उत्तेजित हो गया। तैश में आकर उसने उस पौधे को दोनों हाथों से पकड़ा और हुमक कर उखाड़ डाला। फिर नोच-नोच कर पत्तियों का रस निकाला और सारे बदन में लगा लिया। गुस्सा इतने से भी नहीं मिटा। वह उसे पैरों से रौंदने भी लगा।

हुसेन की यह करतूत उमानाथ देख रहा था। लेकिन वह कुछ न बोला।

पाँच मिनट बीतते ही हुसेन के सारे बदन में खुजली और जलन पैदा हो गई।

वह दोनों हाथों से नोचने लगा। लेकिन सारे बदन को एक साथ खुजलाने के लिए दो हाथ काफी न थे। वह कहाँ कहाँ खुजलाए! फिर ज्यों ज्यों खुजलाता त्यों त्यों खुजली बढ़ती जाती थी। धीरे-धीरे जलन और खुजलाहट इतनी तीव्र हो गई कि हुसेन पागल की तरह उछलने-कूदने लगा। पाँच मिनट और बीते। अब वह दीन-दुनिया की सुध खो बैठा। वह 'या खुदा! या उमानाथ!' कह कर चिल्लाने लगा।

तब उमानाथ ने निश्चल स्वर में कहा—'हुसेन जी! यह हमारे भगवान की महिमा है। वे दर्शन देने के पहले भक्त की परीक्षा लेते हैं; यह जानने के लिए, कि वह दर्शन पाने के योग्य है या नहीं! जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण होते हैं उन्हीं को वह दर्शन देता है। दूसरों को नहीं।'

तब पागल की तरह उछलते हुए हुसेन ने कहा—'भाई! हमें उनके दर्शन नहीं चाहिए। भाई! मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ! तुम अपने भगवान से कहो कि वे मेरा पिण्ड छोड़ दें!' यह कह कर वह उमानाथ के पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ाने लगा।

उमानाथ को तरस आ गया। उसने बगल के एक गाँव में ले जाकर हुसेन की दवा कराई। तब कहीं जाकर उसको चैन हुआ। इसके अलावा सौदा भी उसी गाँव में पट गया।

हुसेन मूँगफली के बोरे लेकर वहाँ से चला गया। उस दिन से हुसेन को हिन्दुओं के देवताओं पर बड़ा विश्वास हो गया। अब वह पहले की तरह हँसी नहीं उड़ाता। वह कहता है—हरेक धर्म वालों के लिए उनका भगवान बड़ा है।
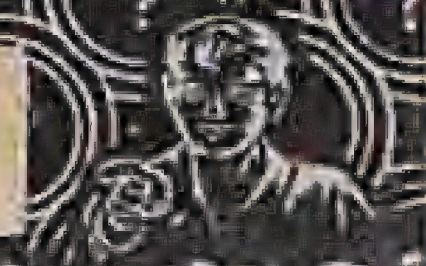
एक बार लकड़बग्घा जङ्गल की सैर करने चला। राह में उसे एक खरहा मिल गया। 'खरहे मामू! खरहे मामू! क्या खबर है? जङ्गल की खबरें तो सुनाओ!' लकड़बग्घे ने कहा।

'खबरें तो बहुत हैं! सुनो, आज मैंने एक विचित्र जीव को देखा है।' खरहे ने कहा।

खरहे की बात सुन कर लकड़बग्घे का कुतूहल बहुत बढ़ गया। उसने उस विचित्र जीव के बारे में और कुछ बताने की प्रार्थना की।

तब खरहे ने कहा—'क्या बताऊँ! इस जीव के पैर हैं; पर नाखून नहीं। नाखून की बात ही क्या; जब उँगलियाँ ही नहीं हैं! फिर उसके पैर भी दो हिस्सों में बिरे रहते हैं। तुम्हारे मन में जिस रङ्ग का ख्याल आता है, वही रङ्ग उसके बदन पर दिखाई देता है। याने वह पल पल पर रङ्ग बदलता रहता है।' इतना कह कर वह और भी कुछ बताने जा रहा था कि लकड़बग्घा खिलखिला कर हँस पड़ा।

लकड़बग्घे के मन में न आया कि खरहा गिरगिट का ही इतना लम्बा चौड़ा वर्णन कर रहा है। उसे तो खरहे को यों वर्णन करते सुन कर हँसी आ गई थी। तब से वह जब कभी खरहे की बातें याद करता तो उसे जोर की हँसी आ जाती। धीरे-धीरे उसे इस तरह हँसने की आदत हो गई।

लकड़बग्घे को इस तरह बिना कारण हँसते देख कर सभी जानवरों ने समझा कि वह पागल हो गया है। वे उसकी खूब हँसी उड़ाने लगे।

यह देख कर लकड़बग्घे को बड़ा गुस्सा आ जाता था। यहाँ तक कि रोनी सूरत बना कर सोचने लगता था—'यह क्या! मैं पागल

की तरह क्यों हँसने लगा हूँ ? मैं खुद नहीं जानता कि क्यों हँस रहा हूँ ! हाँ, उस दिन सैर करते समय खरहे ने मुझसे एक विचित्र जीव के बारे में बातें की थीं। तब से मैं पागल की तरह हँसने लगा हूँ। अब तो बहुत कोशिश करने पर भी यह आदत नहीं छूटती। हाय! मैं क्या करूँ !' यह सोच कर लकड़बग्घे को खरहे पर बड़ा गुस्सा आ गया।

एक दिन जब उसे फिर खरहा मिला तो उसने अपना सारा गुस्सा उस पर उतार दिया। उसने उसे खूब कोस कर अपने मन की कसर निकाली और अन्त में मजाक उड़ाया—'अहा! क्या सूरत है ! तिस पर देखो, ये लँगड़ी टाँगें !'

उसकी बातें सुन कर खरहे को बहुत गुस्सा आ गया। लेकिन उसने उस समय कुछ नहीं कहा। एक दिन खरहे ने लकड़बग्घे से कहा—'चलो! टहलने चलें!' यह कह कर वह उसे एक वीरान जगह ले गया। वहाँ उसने कहा—'आओ, हम दोनों बाजी लगाएँ कि कौन आँख मूँद कर पीछे की ओर वेग से चलता है !'

बेवकूफ लकड़बग्घा राजी हो गया और तुरंत आँख मूँद कर पीछे की ओर चलने लगा। जाते जाते वह एक गड्ढे में गिर पड़ा और उठ भी न सका।

आखिर जब खरहे ने आकर उसे सहारा देकर उठाया तो देखा कि पिछली दोनों टाँगें टूट गई हैं। तब उसने कहा—'ऐ बेवकूफ लकड़बग्घे! मैंने मजाक में तुझे एक अजीब किस्सा सुनाया। तुम वह तो समझ न सके। उलटे गलत-फहमी में पड़ कर मुझको कोसा और मखौल उड़ाया। अब देखो, जरा अपनी टाँगें! अब बताओ, किसकी टाँगें लँगड़ी हैं ? अब जरा चलो तो देखें, कैसे चलते हो !' यह कह कर वह उसकी हँसी उड़ाने लगा। उस दिन से बेचारा लकड़बग्घा लँगड़ा कर चलने लगा।

चन्दामामा पहेली

संकेत

बाएँ से दाएँ :

१. सौभाग्य

२. बुजदिल

५. बीता हुआ

७. स्वीकार

८. अपना

१०. वसन्त

१३. कमल

१४. लाचारी

ऊपर से नीचे :

१. सुभीता

३. औरत

४. भूखा

५. विचित्र

६. चित्र

९. नौका

११. माला

१२. अहदी

फलों की विशेषताएँ

आहार के विषय में जानने लायक बहुत सी बातें हैं। इसलिए इस बार फलों के बारे में और कुछ बातें बताती हूँ। बच्चों के शरीर की वृद्धि के लिए पुष्टि-कारक आहार देना आवश्यक है। यह तो सभी जानते हैं कि दूध के पीने से हड्डियाँ मजबूत बनती हैं और घी खाने से चर्बी बढ़ती है। लेकिन यह बहुत कम लोग जानते हैं कि खजूर और इमली में लोहा रहता है। आम, अंगूर, जामुन आदि फलों में भी लोहा ज्यादा होता है। कटहल और नींबू जाति के फलों में चूना ज्यादा होता है। आँवले में 'सी' विटामिन ज्यादातर मिलता है। फल हमेशा पके हुए खाने चाहिए। कच्चे, अधपके फल खाने से लाभ के बदले हानि हो सकती है। फलों के गूदे में ही नहीं; कभी कभी छिलके में भी शरीर के लिए लाभ-दायक गुण होते हैं। इसलिए कुछ फलों के छिलके उतारे बिना ही खाना चाहिए। कुछ लोग फल काट कर, शक्कर मिला कर खाते हैं। यह अच्छा नहीं। क्योंकि शक्कर में जो रासायनिक द्रव्य होते हैं उनके कारण फलों का प्रभाव नष्ट हो जाता है। कुछ लोग सिर्फ़ फलों का आहार करके रह जाते हैं। लेकिन यह भी ठीक नहीं। मनुष्य के शरीर के लिए जो जो चीज़ें जरूरी हैं वे सभी फलों में नहीं मिलतीं। अच्छी खुराक में सब तरह के तत्व होने चाहिए। तभी मनुष्य का शरीर स्वस्थ और नीरोग रह सकता है। इसलिए मामूली भोजन करते हुए आदमी फल भी खाए तो उसे विशेष लाभ हो सकता है।

तुम्हारी दीदी

ऊपर के नौ चित्रों में सब एक से दिखाई देते हैं। लेकिन वास्तव में दो ही एक से हैं। बताओ तो देखें, वे दोनों कौन से हैं? अगर न बता सको तो जवाब के लिए ५४-वाँ पृष्ठ देखो।

ताश की पत्ती अण्डे में

किसी को एक ताश की पत्ती चुन लेने को कहो। उसके बाद एक उबाला हुआ अण्डा लेकर दर्शकों के हाथ में दे दो। वे उसे अच्छी तरह उलट-पुलट कर देखेंगे और तुम्हें लौटा देंगे। उसके बाद तुम अण्डे को फोड़ दोगे तो उनकी चुनी हुई ताश की पत्ती उस अण्डे के अन्दर लिखी दिखाई देगी। अब सुनो—मैं बताता हूँ कि यह तमाशा कैसे करना चाहिए। तमाशा करने के लिए आने के पहले ही तुम घर से एक अण्डा नीचे लिखे तौर पर तैयार करके ले आओगे!

तीन औन्स सिरके (Vinegar) में एक औन्स स्फटिक का चूरा अच्छी तरह मिला लो। एक कूची लेकर इस सिरके में डुबा दो और दर्शकों द्वारा चुनी जाने वाली ताश की पत्ती की तस्वीर अण्डे के ऊपर लिखो। इस तरह लिख कर अण्डे को अच्छी तरह सुखा दो जिससे तुम्हारी लिखी हुई तस्वीर किसी

को न दिखाई दे। उसके बाद अण्डे को दस पन्द्रह मिनट तक उबाओ। इस तरह अण्डा तैयार कर लो।

और एक बात है। अगर दर्शकों ने अण्डे पर तस्वीर लिखी हुई पत्ती छोड़ कर और कोई पत्ती चुन ली तो तुम तुरन्त पकड़े जाओगे। इसलिए तुम ताश की ऐसी गड्डी हाथ में लो जिसमें सभी पत्तियाँ एक सी याने तुम्हारी तस्वीर लिखी हुई पत्तियाँ ही हों। अब दर्शक चाहे कोई भी पत्ती चुन लें, तुमको कोई कठिनाई न होगी। क्योंकि सभी पत्तियाँ एक सी होंगी। उसके बाद जब तुम अण्डे को फोड़ कर दर्शकों को दिखाओगे तो उनको चुनी पत्ती की तस्वीर साफ-रूप से अण्डे के अन्दर लिखी हुई होगी। यह तमाशा करने में जरा सावधानी की जरूरत है। लेकिन वास्तव में यह बहुत आसान है और साथ ही बहुत आश्चर्यजनक भी है।

[जो इस सम्बन्ध में प्रोफेसर साहब से पत्र-व्यवहार करना चाहें वे उनको 'चन्दामामा' का उल्लेख करते हुए अंग्रेजी में लिखें।

प्रोफेसर पी. सी सरकार, मेजीशियन
१२/१ ए, फकीर लेन, बालीगंज, कलकत्ता, १९]

शब्दों का खेल

नीचे लिखे संकेतों की सहायता से इन शब्दों के पहले अक्षरों की पूर्ति करो और अपनी तरफ से कुछ ऐसे ही शब्द सोचो।

१. माँग :: —चना
२. पढ़ना :: —चना
३. विचार करना :: —चना
४. युक्ति :: —चना
५. भिगोना :: —चना
६. गूँदना :: —चना
७. छल :: —चना
८. नृत्य करना :: —चना
९. सृष्टि :: —चना
१०. शेष रहना :: —चना
११. झुकना :: —चना
१२. विक्रय करना :: —चना
१३. परीक्षा लेना :: —चना
१४. नोटिस :: —चना
१५. हजम होना :: —चना
१६. आकर्षित करना :: —चना

अगर तुम पूरा न कर सको तो जवाब के लिए ५४-वाँ पृष्ठ देखो।

अंगारों पर चलना सीखो !

[श्री 'अशोक' बी० ए०]

चाहे हो छाया अँधियारा !
छूट गया हो सभी सहारा !
मंजिल अगर दूर हो तो भी
हिम्मत को पथ करना सीखो !
अंगारों पर चलना सीखो !

राह सरल हो या दुर्गम हो !
चलो कि जब तक दम में दम हो !
बढ़ा चुके पग एक बार तो
फिर पीछे हटना मत सीखो !
अंगारों पर चलना सीखो !

कर्मवीर जो नर होते हैं,
दुख में कभी न वे रोते हैं !
वैसे वीर बनो तुम जग में
दुख में भी नित हँसना सीखो !
अंगारों पर चलना सीखो !

शूलों को भी फूल बनाओ !
दुश्मन को भी दोस्त बनाओ !
स्वाभिमान के लिए सभी से
आगे बढ़ कर लड़ना सीखो !
अंगारों पर चलना सीखो !

अपने प्रण पर अटल रहो तुम !
संकट में भी अचल रहो तुम !
'माँ' की लाज न जाने पाए
देश-धर्म-हित मरना सीखो !
अंगारों पर चलना सीखो !

चन्दामामा पहेली का जवाब :

सु	हा	ग		का	य	र
वि			मो			म
धा		अ	ती	त		गो
	रा	जी		स्वी	य	
ज		व	हा	र		आ
हा			र			ल
ज	ल	ज		वे	द	सा

नौ चित्रों वाली पहेली का जवाब :

२ और ८ नंबर वाले चित्र एक से हैं।

शब्दों के खेल का जवाब :

१. याचना, २. भींचना, ३. सोचना, ४. पोचना, ५. सींचना, ६. मींचना, ७. ऐंचना, ८. नाचना, ९. रचना, १०. बचना, ११. लचना, १२. पेंचना, १३. खोंचना, १४. सूचना, १५. पचना, १६. सींचना।
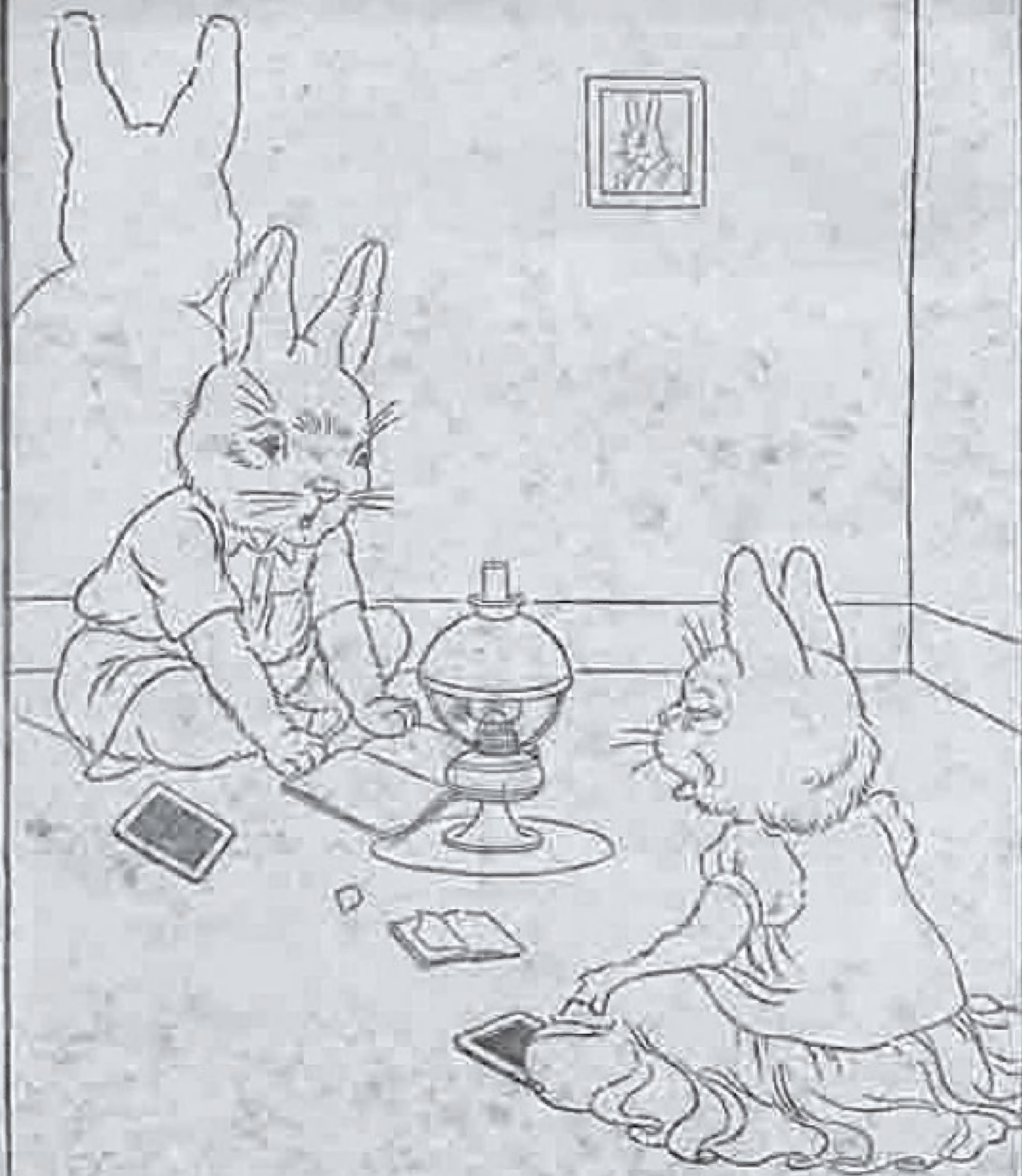
इस तस्वीर को रंग कर अपने पास रख लेना और अगले महीने के चन्दामामा में पिछले कवर पर के चित्र से उसका मिलान करके देख लेना।

Photo by A. L. Syed

माली

कौन !.... मास्टर साहब !....